जैन धर्म नास्तिक नहीं

डा0 अनिता जैन
प्राचार्या,
जे0ए0वी0 गर्ल्स डिग्री कॉलेज, बड़ौत
Email: dranitajain.61@gmail.com

सारांश

वास्तविकता से अनभिज्ञ बहुत से लोगों में एक भ्रान्ति फैली हुई है कि जैन धर्म परमात्मा को नहीं मानता इसलिए वह नास्तिक है। वास्तव में यह भ्रान्ति निराधार है। जैन धर्म परमात्मा को मानता है, परन्तु उस रूप में नहीं जैसे कि अन्य धर्मावलंबी मानते हैं। किसी वस्तु की सत्ता को न मानना और उसमें आरोपित विशेष गुणों को न मानना अथवा उसे अन्य गुणों सहित मानना–यह सब बातें एक नहीं हैं। विशेष गुणों सहित परिशुद्ध आत्मा को ही परमात्मा मानना यह जैन धर्म की समीचीन मान्यता है। संसार में प्रायः सभी मतावलंबी ऐसा मानते है कि इस सष्टि काा कर्ता, हर्ता तथा शास्ता एक 'परमात्मा है और संसार का सब व्यवहार उसकी इच्छानुसार चलता है। जैन धर्म ऐसे कर्ता, हर्ता और शास्ता परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। उसकी मान्यता है कि यह संसार अनादिनिधन है। छह द्रव्यों का समुदाय ही संसार है। इसका न कोई कर्ता है और न ही कोई इसका विघटन कर सकता है। अनादि काल से ऐसे चला आ रहा है और अनन्त समय तक ऐसे ही चलता रहेगा। प्रत्येक प्राणी में अपनी आत्मा को शुद्ध करके परमात्मा बनने की शक्ति विद्यमान है। प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र और निरांलब है।

मुख्य शब्द– *अनभिज्ञ, शास्ता, श्रद्धान, अनादिनिधन, ज्ञानावर्ण, भावकर्म, नौकर्म, सर्वज्ञ, पुद्गल, समाधात, निर्जरा, नैसर्गिक, चारूता, समवायि, उपादान*

प्रस्तावना

अनादि काल से लगी आ रही कर्मों की कालुशता, अपनी कमजोरी और अपने मोह, राग ओर द्वेष रूपी कशायों के कारण यह जीव (आत्मा) इस संसार में परिभ्रमण कर रहा है। जब किसी भव्य प्राणी/आत्मा को अपने स्वरूप का सच्चा श्रद्धान और ज्ञान हो जाता है तो वह चारित्र (तपश्चरण) द्वारा अनादि कालीन द्रव्य कर्म (ज्ञानावरण आदि), भाव कर्म (क्रोधादि रूप भाव) और नोकर्म (शरीरादि) को अपने से सर्वथा पृथक करके एक शुद्ध, सिद्ध, सर्वगुणसंपन्न, अनन्त शक्तिशाली, अनन्त ज्ञानमय, अनन्त आनन्दमय, सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा बन सकता है जो कि पुनः कभी भी अपने गुणों से च्युत या भ्रष्ट नहीं होता है। ऐसा 'परमात्मा ही जैन धर्म को परमात्मा के रूप में मान्य है, अन्य कोई व्यक्ति विशेष परमात्मा नहीं है। यही सबसे बड़ा कारण है कि जैन धर्म के ऊपर नास्तिकता का लेबल लगा दिया जाता है। यह भारी भूल है। जैन धर्म को तो आत्मा

की स्वतंत्र सत्ता में अटूट श्रद्धान है और सिद्धान्त में "आत्मा के विश्वास को ही आस्तिकता कहा है।"

श्री हरबर्ट वारन नामक जैन धर्म के मर्मज्ञ विदेशी विद्वान ने आज से लगभग 100 वर्ष पहले सभी दर्शनों का गूढ़ अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि जैन धर्म वास्तव में नास्तिक नहीं। नास्तिक तो वह लोग है जो आत्मा की स्वतंत्र सत्ता से इंकार करते हैं और ऐसा मानते हैं कि पुद्गल से भिन्न/अन्य कोई आत्मा नाम का द्रव्य नहीं है। श्री वारन ने "Jainism not an Atheism" के शीर्षक से एक लेख अंग्रेजी में लिखा था जो कि भारत में तथा विदेशों में जैन धर्म की 'परमात्मा' सम्बन्धी मान्यता को समझाने में काफी प्रसिद्ध हुआ।

जो लोग इस सृष्टि का कर्ता या सृष्टा ईश्वर को मानते हैं वे कभी–कभी जैन धर्म को नास्तिक समझने लगते हैं; परन्तु जैनियों को नास्तिक कहना कदापि उचित नहीं है। जैन धर्म में "गॉड" (परमात्मा) की सत्ता का निषेध नहीं किया गया है। जैन शास्त्रों में गॉड का स्वरूप बतलाया गया है, परन्तु उसमें और अन्य मतों की धार्मिक पुस्तकों में उसका जो निरूपण किया गया है, उसमें बड़ा अन्तर है। सबसे बड़ा अन्तर यह है कि अन्य मतों की पुस्तकों में गॉड को सृष्टा और शास्ता माना है, परन्तु जैन ग्रन्थों में ऐसा नहीं है। जैन धर्मानुसार "गॉड" सर्वज्ञ और सर्वानन्दमय है तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न है। वह एक शुद्ध और सिद्ध आत्मा है और किसी भी भौतिक शरीर से रहित है। वह अविनाशी और अपरिवर्तनीय आत्मा है। अर्थात् उसका कभी नाश नहीं होता और न वह अपने पद से च्युत होकर फिर कभी भ्रष्ट हो सकता है।

किसी वस्तु की सत्ता को न मानना और उस वस्तु में किसी विशेष गुण का न मानना ये दोनों बातें समान नहीं है। क्योंकि जैन धर्म में आत्मा की सत्ता को शुद्ध और परिपूर्ण अवस्था में माना है, तो फिर जैन धर्म को उन लोगों की श्रेणी में नहीं रख सकते जो आत्मा को पुद्गल या शरीर से भिन्न नहीं मानते है। पवित्र (शुद्ध) आत्मा और गॉड वस्तुतः एक ही वस्तु हैं और प्रत्येक विशेष आत्मा का अन्तिम प्रयोजन शुद्ध और सिद्ध होना है। या यह कहो कि प्रत्येक आत्मा का उद्देश्य "गॉड" बन जाना है, जिसमें परमात्मत्व के सम्पूर्ण गुण हैं और जैन धर्म के अनुसार इन गुणों में उत्पन्न करने और शासन करने के गुण अनुगत नहीं हैं। सच पूछो तो नास्तिक वे है, जो आत्मा का होना नहीं मानते और यह कहते है कि आत्मा पुद्गल से पृथक् कोई वस्तु नही है। उनकी ऐसी मान्यता है कि लोग जिसको आत्मा कहते है, वह केवल पुद्गल के परमाणुओं के विशेष संयोग का फल या प्रादुर्भाव है और कुछ नहीं और जब इस विशेष संयोग का विघटन हो जाता है तब आत्मा नष्ट हो जाता है।

जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक आत्मा का अस्तित्व अनादिकाल से चला आया है और आत्मायें अनादिकाल से ही साधारण शरीर सम्बन्धी सांसारिक अवस्था से निकलकर शुद्ध अवस्था में आने का प्रयत्न करती रही हैं और सदा ऐसा ही प्रयत्न करती रहेगी, परन्तु वे (मुक्त आत्मायें) इस परमात्मत्व की अवस्था से फिर साधारण शरीरी आत्माओं में परिवर्तित नहीं होती।

साधारणतया आत्मा अपने वास्तविक स्वभाव को न जानकर सदा से अनादिकाल से राग और द्वेष में आसक्त हो रहा है और इस आसक्ति के कारण वह कभी भी शान्त नहीं है। इस राग

और द्वेष से छूट जाने पर आत्मा शान्त और स्वस्थचित्त हो जाता है और जब आत्मा इस बाह्य और कृत्रिम व्यवसायों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हो जाता है, तब वह अपने वास्तविक जीवन में रहकर सर्वज्ञ बन जाता है। सदा आनन्दमय और अविनाशी हो जाता है, किं बहुना वह एक "गॉड" या परमात्मा (उत्कृष्ट आत्मा) बन जाता है। इस प्रकार जैन धर्म में गॉड की सत्ता या अस्तित्व का निषेध तो नहीं है, परन्तु वह यह नहीं मानता है कि परमात्मत्व में अन्य वस्तुओं और प्राणियों या जीवों को उत्पन्न करने और दण्ड या पारितोषिक देकर उन पर शासन करने का गुण है।

अब हम यह देखना चाहते है कि परमात्मा में संसार के रचने और शासन करने के गुणों का आरोपण करने से उसके इतर गुणों में तो बिगाड़ या दोष नहीं आता अथवा परमात्मा में इन गुणों के मानने से कई प्रकार की विरोधोक्तियां और दूषण आते हैं और वे मनुष्य के सदाचारी बनने और मोक्ष प्राप्त करने में सहकारी या सहायक नहीं होते।

जो लोग "गॉड" को सृष्टा मानते है, वे विशेषतः दो श्रेणियों में विभक्त हो सकते है–

1– वे लोग जो तीन वस्तुओं को शाश्वत व अनादि मानते हैं अर्थात् गॉड, आत्मा और पुद्गल और यह कहते हैं कि आत्मा और पुद्गल के द्वारा "गॉड" जगत् को बनाता है। और

2– वे लोग जो यह मानते है कि "गॉड" ही शाश्वत या अनादि है और अन्य कोई वस्तु अनादि नहीं। इस श्रेणी के दो भेद हो सकते हैं (क) वे लोग जो यह मानते है कि "गॉड" ने जगत् को 'नहीं' (शून्य) से रचा अर्थात् पहले कुछ नहीं था फिर सब कुछ कर दिखाया और (ख) वे लोग जो यह मानते हैं कि "गॉड" ने जगत् को अपने भीतर से उत्पन्न किया है।

वे लोग जो यह मानते है कि "गॉड", पुद्गल और आत्मा अनादि है और गॉड जगत् को पुद्गल और आत्माओं के द्वारा बनाता है, इससे यह स्पष्ट है कि हम पुद्गलों और आत्माओं और उनके गुणों व अवस्थाओं को मानते है, तो फिर वे (गुण और अवस्थायें) आप ही अपने पारस्परिक सम्मेलन और समाघात से जगत् को बनाने में सर्वथा समर्थ है और "गॉड" के संयोग की इसमें आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

पुनः परमात्मा में सिद्ध या सम्पूर्णता और आनन्द का होना आवश्यक है और इस प्रकार जब परमात्मा सिद्ध या सम्पूर्णता और आनन्दमय ठहरा तब उसमें संसार के रचने की इच्छा नहीं हो सकती, क्योंकि संसार के रचने की इच्छा होना परमात्मा में एक प्रकार की कमी का सूचक है। कमी और परिपूर्णता (सिद्धि) में परस्पर विरोध है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा को सृष्टा मानने से परमात्मा में परिपूर्णता (सिद्धि) और आनन्द के गुण नष्ट हो जाते हैं अर्थात् उन गुणों का अभाव मानना पड़ता है।

लोग यह मानते हैं कि साधारण जीवित प्राणी दुःख और कष्ट भोगते हैं और संसार को दिए हुए परमात्मा के धर्मोपदेशों पर चलने से ही जीवन इन सांसारिक दुःखों से मुक्त हो सकता है, परन्तु पहले जीवों को रचना या बनाना और फिंर उनको संसार के दुःखों और कष्टों में फंसाना और फिर उन्हें ऐसा उपदेश देना, जिस पर चलकर वे अपने आपको इन दुःखों और कष्टों से मुक्त कर सकें भला इसमें क्या चतुराई या बुद्धिमता है। एक सर्वज्ञ और सर्व–शक्तिमान जो पहले तो

एक वस्तु को असमर्थ या अपर्याप्त अवस्था में रखे और फिर उसके सुधारने या उन्नति करने के नियम बताये तो उसे बुद्धिमान और हितकारी नहीं कहा जा सकता।

पुनः सर्वज्ञ को यह परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है कि वह किसी व्यक्ति या वस्तु को देखे कि वह क्या करता है और यदि यह कहा जाये कि "गॉड" ने जीवों को संसार में यह देखने के लिए रचा था कि उनमें कौन से जीव मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं और कौन–कौन से नहीं, तो इससे परमात्मा सर्वज्ञ नहीं ठहरता।

परमात्मा को सृष्टा मानना साधुता या श्रेष्ठता के विरूद्ध है। क्योंकि जब एक सम्पूर्णतया श्रेष्ठ साधु को सृष्टा माना जाये तो उसको रची हुई सृष्टि में कोई दोष या दूषण या मलिनता नहीं होनी चाहिए। कोई सांसारिक शास्ता यह नहीं चाहता कि उसके देश में बुरे कार्य किये जाये। परन्तु सांसारिक शास्ता सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान नहीं है और इसलिए वे ऐसे कार्यों को अपने देशों में होने से रोक नहीं सकते अर्थात् ऐसा उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते कि ये कार्य उनके देश में होने ही न पावें, परन्तु परमात्मा को सम्पूर्णतया शक्तिमान हितकारी और सर्वज्ञ ही माना गया है इसलिए यदि जगत् का कर्ता परमात्मा होता तो संसार में कोई दुष्कर्म न होते क्योंकि वह अपने रचे हुए जीवों को ऐसे कर्म करने की शक्ति न देता।

यही दशा शोक, दुःख, रोग और दरिद्रता की है। यदि यह कहें कि दुःख और रोग उन प्राणियों के ही बुरे कर्मों के फल हैं और यदि परमात्मा कर्ता समझा जाये जिसने लोगों को दुष्कर्म करने की शक्ति दी और फिर उन्हें उस शक्ति को काम में लाने के कारण दण्ड दिया तो ऐसे परमात्मा में साधुता का अभाव है। क्योंकि कोई मनुष्य ऐसे सांसारिक पिता के विषय में क्या विचार करेगा, जिसने अपने पुत्र को कोई बुरा कार्य करने में प्रवृत्त देखकर और उसे उस कार्य से रोकने में समर्थ होकर भी इस विषय में पहले से कोई प्रबंध नहीं किया वरन पीछे से (जब वह कार्य कर चुका) उस दुष्कर्म के बदले पुत्र को दण्ड दिया।

अब हम दूसरी बात पर विचार करते है कि "गॉड" ही शाश्वत है और उसी ने संसार को 'नहीं' (शून्य) से रचा या अपने भीतर से बनाया।

जो लोग यह मानते है कि "गॉड" ने संसार को "नहीं" (शून्य) से रचा, तो इस मत के समर्थन के लिए कोई प्रमाण या हेतु दिखाई नहीं देता। क्योंकि प्रकृति से ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता कि यह संसार शून्य से अस्तित्व में आया अर्थात् पहले कुछ भी नहीं था और गॉड ने उसे बना दिया। प्रकृति में कोई एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता जहाँ "नहीं" (शून्य) या अभाव या असत् से कोई वस्तु उत्पन्न हुई हो। प्रत्येक वस्तु जो हम देखते हैं, उसकी कोई न कोई पूर्व अवस्था थी और हम ऐसी वस्तु भी नहीं देखते जिसका अभाव हो जाये। पदार्थ विज्ञान द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि शून्य से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती और किसी वस्तु का सर्वथा अभाव भी नहीं हो सकता। यदि "गॉड" ने संसार को "नहीं" (शून्य) से रचा तो वह उसका सर्वथा नाश भी कर सकता है और इसका यह अर्थ होता है कि अस्तित्व नास्तित्व में या सत् असत् में परिवर्तित हो सकता है, इसलिए जिस "गॉड" का हम इस समय विचार कर रहे है, उसकी पूजा करने वाले लोग एक ऐसे जीव की पूजा या आराधना करते हैं, जिसमें अनुपस्थित या अविद्यमान

होने की भावी शक्ति या संभावना है, परन्तु "अस्तित्व" और "नास्तित्व" अथवा "भाव" और "अभाव" परस्पर विरोधी शब्द हैं और एक दूसरे में नहीं घट सकते। अभाव (असत्) भाव (सत्) नहीं हो सकता और न भाव (सत्) अभाव (असत्) हो सकता है। यह एक सर्वसाधारण बुद्धि और सहज ज्ञान का एक सामान्य तत्व है। इस प्रकार यह मत या सिद्धान्त कि "गॉड" ने संसार को "नहीं" (शून्य) से रचा और वह जब चाहे उसका सर्वथा नाश कर सकता है, सर्व साधारण बुद्धि, सहजोपलब्ध तत्व पदार्थ विज्ञान प्रमाण और प्राकृतिक नियम के विरूद्ध है, अर्थात् आयुक्ति सिद्ध और अप्रमाणिक है।

अब दूसरी बात यह रही कि गॉड ही शाश्वत है और उसने संसार को अपने भीतर से रचा है, अर्थात् उसने अपने आप ही संसार की आकृति या रूप ग्रहण कर लिया है। इस सिद्धान्त के मानने पर यह प्रश्न उठता है कि गॉड तो शुद्ध और परिपूर्ण जीव है, फिर उसने अपने आपको इस अशुद्ध और अपूर्ण संसार में किस प्रकार परिवर्तित किया। इसलिए या तो हम संसार के रचने का कार्य उस पर आरोपित नहीं कर सकते या यह मानना पड़ेगा कि अपवित्रता या अशुद्धता का अंकुर जो संसार में विद्यमान रहा है सदा से गॉड में भी होना चाहिए। एक कठिनाई तो यह है। एक और दूसरी कठिनाई (दुःसाध्यता) यह है कि एक चेतन द्रव्य का अचेतन हो जाना असम्भव है। संसार में जड़ अचेतन द्रव्य और ज्ञानमय चेतन द्रव्य दोनों हैं। परन्तु संसार में ज्ञानमय चेतन द्रव्य किसी जड़ अचेतन द्रव्य के कार्य को नहीं कर सकते और न ही उस रूप हो सकते है, इसलिए यह सिद्धान्त कि गॉड–एक ज्ञानमय चेतन द्रव्य ने बुद्धिरहित या जड़ भागों से मिले हुए संसार की आकृति ग्रहण करके संसार को रचा; मानने योग्य नहीं है।

जो लोग यह मानते है कि "गॉड" ही शाश्वत है और वह आप ही संसार की आकृति ग्रहण कर लेता है, उनमें एक वेदान्ती भी हैं। इनका यह मत है कि "गॉड" शुद्ध या ज्ञानरूप है और जब उसने संसार को रचा तो उसने अपना ऐसी वस्तु से संयोग किया जो जड़ अचेतन भासती है और जिसे अचेतन या जड़ कहते है। परन्तु यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह अचेतन या जड़ वस्तु जिससे कि ज्ञानमय चेतन द्रव्य का संसर्ग हुआ वह (जड़ अचेतन वस्तु) "गॉड" से पृथक् और भिन्न वस्तु है या यह गॉड का ही एक गुण है। यदि यह कोई भिन्न (अलग) वस्तु है तो इस मान्यता में कि "गॉड" एक शाश्वत है; विरोध आता है या दूषण लगता है और अद्वैतवाद के स्थान में द्वैत–वाद को मानना पड़ता है। इसके विपरीत यदि वह जड़ वस्तु सदा से उसके (गॉड के) साथ रहती तो उसे (गॉड को) हम शुद्ध या ज्ञानरूप नहीं मान सकते। उसमें अचेतनता या जड़ता और अपवित्रता या अशुद्धता के भाग सदा ही से मिले हुए होने चाहिये। जैन धर्म में भी शुद्ध और परिपूर्ण ज्ञान का अचेतन और अशुद्धता से संयोग माना है, परन्तु भेद यह है कि वेदान्ती तो यह मानते है कि "गॉड" ने किसी विशेष समय में इस अचेतन या जड़ वस्तु से अपना संयोग किया और इस प्रकार यह दृश्य संसार बन गया और जैन धर्म की मान्यता है कि यह शुद्ध चेतन और जड़ वस्तु जैसे अब मिले हुए हैं ऐसे ही मिले हुए चले आ रहे हैं और इस प्रकार ये इस दृश्य संसार के कारण हैं। आत्मा और पुद्गल सामान्य जीवित प्राणी में वस्तुतः परस्पर संयुक्त है, परन्तु वे कभी अर्थात् किसी विशेष समय में संयुक्त नहीं हुए वरंच सदा से ही या अनादिकाल से ही

संयुक्त हो रहे है; इसलिए उनके संयुक्त होने का क्या कारण है, यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता। क्योंकि कोई ऐसा समय नहीं था, जिसमें वे आत्मा जो अब संयुक्त है; संयुक्त ही नहीं थे। अर्थात् सदा से ही संयुक्त थे। आत्मा का वास्तविक स्वरूप एक ही है चाहे वह पुद्गल से मिला हुआ हो चाहे शुद्ध हो। परन्तु आत्मा जड़ वस्तु से सूक्ष्म भौतिक शक्तियों के रूप में मिला हुआ है। इसलिए इनसे आत्मा में रागद्वेष के भाव उत्पन्न होते है और ये विकारी कषाय भाव भले और बुरे कृत्रिम कर्मों के निमित्त (कारण) बनकर एक प्रकार के हेतु या साधन है जिनके द्वारा इसी प्रकार के नये पदार्थ या कर्मों के परमाणु आत्मा में आकर मिल जाते हैं। यह जड़ वस्तु जो आत्मा में आकर मिल जाती है, एक प्रकार की संचित या एकत्रित शक्ति बन जाती है जो किसी न किसी समय कर्म के रूप में उदित होकर आत्मा में किसी प्रकार का सुख या दुःख उत्पन्न करेगी। इस प्रकार अपनी सारी शक्ति व्यय करने के अनन्तर यह जड़ वस्तु (कर्म) आत्मा से अलग हो जाती है। परन्तु जैसा पहले वर्णन किया गया है, कि जब तक इसका उदय रहता है यह एक साधन है, जिसके द्वारा इसी प्रकार की नई वस्तुयें (कर्म) आत्मा में आकर मिलती रहती है और निरन्तर ऐसा ही होता रहता है; फिर अन्त में जब आत्मा अपने स्वरूप को पहचान लेता है, तो इन बाह्य शक्तियों (कर्मों) की निर्जरा होती जाती है और उसी प्रकार की और नई शक्तियाँ (कर्म) उत्पन्न नहीं होती। जब एक बार ये बाह्य शक्तियाँ (कर्म) आत्मा से अलग हो जाती हैं, तब आत्मा शुद्ध हो जाता है और फिर अपवित्र नहीं होता, वह अपनी दैवी सम्पत्ति या परमात्तत्व को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार अब हमने देख लिया है कि परमात्मा में कर्ता और शास्ता का गुण आरोपण करने से उसके इतर वास्तविक नैसर्गिक गुणों में हानि आये बिना नहीं रहती। इसके सिवाय और भी कुछ बातें विचार योग्य है।

इस संसार का एक कर्ता और एक शास्ता अवश्य होना चाहिए। इस विश्वास के समर्थन में एक बड़ा हेतु यह दिया जाता है कि देखो सृष्टि की रचना में रचनात्मक क्रम, कौशल और व्यवस्था पाई जाती है। उसमें सौंदर्य या चारूता भी विद्यमान है और इन दोनों बातों से यह पाया जाता है कि इस जगत् का निर्माता कोई बुद्धिमान पुरूष है अर्थात् ऐसी सुन्दर और यथाक्रम सृष्टि की रचना के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। प्रथम तो यह कहना ठीक नहीं है कि संसार में केवल सौंदर्य और क्रम ही दीख पड़ते हैं; उसमें अक्रम और कुरूपतायें भी हैं, यदि यह कहा जाये कि परमात्मा किसी लाभदायक या हितकारी उद्देश्य से ही आँधियाँ, भूकम्प और रोगों को भेजता है तो फिर यह स्पष्ट है कि इस बात के मानने से दयालुता या सर्वशक्तिर्मता के गुण में हानि आती है। क्योंकि यदि परमात्मा दयालु और सर्वशक्तिमान होता तो इस प्रकार की पीड़ायें और क्लेश होने ही न देता।

पुनः यह कहना एक बड़े साहस का कार्य है कि सारे जगत् के विस्तार या प्रपंच का कारण जिसमें भौतिक वस्तुयें कुर्सी और मेज भी शामिल है, केवल ज्ञान ही है और कुछ नहीं। एक ऐसा कार्य जिसमें ज्ञान और जड़ता (अज्ञानता) दोनों मिली हुई हो उसकी उत्पत्ति निरे ज्ञान से ही होनी नहीं कही जा सकती। इसके सिवाय क्रम और व्यवस्था भी निरे ज्ञान से ही उत्पन्न

नहीं होती। क्योंकि अचेतन या जड़ कुर्सी मेज की अपेक्षा ज्ञानी जीव का एक क्रम से न चलना अधिक सम्भव है अथवा जड़ वस्तुयें तो अपने स्थिर स्वभाव के अनुसार निरन्तर एक विशेष क्रम से चली चलेगी, जब तक कि कोई वाह्य कारण उनका क्रम न बदल दें।

जैन धर्म के अनुसार यह जगत् चेतन और अचेतन दोनों कारणों द्वारा उत्पन्न हुआ है। चेतन कारण एक ही प्रकार का है और अचेतन कारण पाँच प्रकार के है। ये छहों सत्तायें या विद्यमान वस्तुयें मिलकर, अर्थात् ये छह वस्तुयें (षट् द्रव्य) इनकी अनेक पर्यायें और इनके गुण और स्वभाव जागत् के कर्ता है। चेतन का स्वभाव जानना है। पाँच अज्ञ या जड़–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं।

जैन धर्म यह नहीं मानता कि इन छह द्रव्यों से किसी विशेष काल में जगत् की उत्पत्ति हुई थी। ये द्रव्य कारण विद्यमान है, सदा से विद्यमान रहे हैं और सदा विद्यमान रहेंगे। इन द्रव्यों की परिवर्तनशील दशायें या पर्यायों और परस्पर समाघात ही के कारण सृष्टि का वर्तमान रूप है। किसी घटना में सदा दो कारण होते हैं एक समवायि या उपादान कारण और दूसरा सहकारी या निमित्त कारण। यथा "आग" निमित्त कारण है, जिससे जल उबलने लगता है और जल उबलने की घटना का उपादान कारण है।

ऊपर लिखे हुए छह द्रव्य या सत्ताओं (जीव या आत्मा, आकाश, काल) पुद्गल और दो जिन्हें धर्म और अधर्म कहते हैं, में प्रत्येक द्रव्य में उपादान और निमित कारण दोनों हैं प्रत्येक का व्यापार औरों पर औरों का व्यापार उस पर होता है। प्रत्येक में उत्पाद (उत्पन्न होने) व्यय (नाष होने) और ध्रौव्य (ध्रुव या स्थितरहने की) शक्ति है। इस शक्ति को सत्ता कहते हैं। यह सत्ता कोई भिन्न अस्तित्व वाला द्रव्य नहीं है जो इन छह द्रव्यों से बाहर हो। यह शक्ति इन्हीं छह द्रव्यों में विद्यमान या उपस्थित है और इनसे अवियोज्य है अर्थात् इनसे इस शक्ति को भिन्न नहीं किया जा सकता। इस जगत् से भिन्न कोई ऐसा एक व्यक्ति नहीं है, जो जगत् का रचयिता (कर्ता) और शास्ता हो, किन्तु यह छह द्रव्यों में से प्रत्येक के गुण हैं, कोई चेतन या अचेतन सत्ता या पुरूष नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वस्तुओं को उत्पन्न और नाश करने वाली शक्ति ऊपर लिखे हुए छह द्रव्यों से बाहर और इस जगत् से भिन्न नहीं हैं, यह शक्ति वस्तुओं के भीतर ही अनुगत या उपस्थित है और दोनों में अर्थात् चेतन और अचेतन पदार्थों में पायी जाती है। जैन धर्म में इस शक्ति को "गॉड" या "परमात्मा" नहीं कहते। यह जैन सिद्धान्त है और सर्वथा युक्ति सिद्ध है।

एक बात यह भी विचारने योग्य है कि क्या कर्ता में श्रद्धा रखने से मनुष्य को धर्मशील बनने और मोक्ष प्राप्त करने में सहायता मिलती है? वास्तव में कर्ता या सृष्टा की पूजा करने से यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य धर्मशील बन जाये तथा मुक्ति या मोक्ष प्राप्त कर ले जो इस जीवन की पराकाष्ठा या इस जीवन का परम उद्देश्य है। धर्मशील बनने या धार्मिक चारित्र प्राप्त करने के ये पाँच मूल सिद्धान्त हैं जो कि इतर धर्मों को भी मान्य है।

1– अहिंसा अर्थात् किसी प्राणी को न मारना, न दुःख देना, या आप जीते रहना और इतर जीवों को भी जीवित रहने देना।

2– झूठ न बोलना अर्थात सत्य भाषण करना या सत्यवादी होना।

3– अस्तेय या चोरी न करना, वरंच अर्थशुचि या ऋजुतापरायण रहना।

4– व्यभिचार न करना, वरंच जितेन्द्रिय रहना और कामवासना को दमन करना।

5– अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का त्याग करना।

ऐसे "गॉड" में जो इस सृष्टि का कर्ता माना गया है। श्रद्धा रखने से लोग यह सोचने लगते है कि "गॉड" ने सारी वस्तुओं को मनुष्य के उपयोग के लिए उत्पन्न किया है और यह सोचकर मनुष्य मांस खाने और मदिरा पान करने में रूचि करने लगता है। ऐसे मनुष्य ऊपर लिखे हुए पहले चौथे और पाँचवे सिद्धान्त पर प्रायः नहीं चलते और इन तीन सिद्धान्तों का उल्लंघन करने से वे बहुधा शेष दो सिद्धान्त अर्थात् सत्य और अस्तेय का भी उल्लंघन करते हैं। पुनः बहुत से धर्मों में यह माना है कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए कषायों और कामनाओं का दमन करना और संसार से सम्बन्ध दूर करना अर्थात् विरक्त या निर्मोही होना आवश्यक है और जो लोग "गॉड" को सृष्टा मानते हैं वे इस प्रकार वाद–विवाद करते हैं कि जब "गॉड" ने मनुष्य को ये कषाय या कामनायें दी हैं तो मनुष्य को इनके दमन करने का क्यों यत्न करना चाहिए? और जब "गॉड" ने ही मनुष्यों को संसार में भेजा है तो फिर मनुष्य को संसार से क्यों सम्बन्ध तोड़ना चाहिए या विरक्ति और निर्मोही जीवन क्यों व्यतीत करना चाहिए? इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि "गॉड" को कर्ता मानकर उसकी पूजा करने से यह आवश्यक नहीं कि धार्मिक जीवन या मोक्ष प्राप्त हो। इस प्रकार यह एक और युक्ति है, जिसके कारण जैनधर्मानुयायी "गॉड" में कर्ता होने का गुण नहीं मानते, वरंच "गॉड" को एक शुद्ध और सम्पूर्ण आत्मा, सर्वज्ञ, आनन्दमय, सर्वशक्तिमान और शाश्वत (अनादि और अनन्त) मानते हैं। वह ऐसा आत्मा है जो इतर वस्तुओं या प्राणियों को न तो उत्पन्न करता है और न उन्हें उनके कर्मों का बुरा या भला फल देता है।

कर्तावादी कभी–कभी एक और हेतु देते हैं। वह हेतु दण्ड और पारितोषिक के विषय में है। कहते है कि इस संसार में जहाँ न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट नहीं है, वहाँ अपराधियों और पापाचारियों को दण्ड नहीं मिलता। इसी प्रकार जब तक इस जगत् का कोई शास्ता या नियन्ता न हो तो आत्मा को उसके भले और बुरे कर्मों का शरीर छोड़ने के पीछे दण्ड नहीं मिल सकता। इसके उत्तर में पहले तो यह स्मरण रखना चाहिए कि अपराधियों को सदा न्यायाधीश दण्ड नहीं देता वरंच किसी और प्रकार से भी उन्हें दण्ड मिल जाता है। वे किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण मर जाते हैं, यथा सेंध लगाते समय खिड़की से गिर कर या रोगग्रस्त होकर इत्यादि। दूसरे यह भी याद रखना चाहिए कि न्यायाधीश कभी–कभी निरपराधी मनुष्यों को कारागार में भेज देते हैं और जो सचमुच अपराधी है वह छूट जाता है। इसलिए यह नहीं कह सकते कि न्यायाधीश और मजिस्ट्रेट ही प्रत्येक के पारितोषिक और दण्ड देने वाले हैं, इसके अतिरिक्त किसी और कारण का होना भी आवश्यक है। जैन धर्म के अनुसार इस पारितोषिक और दण्ड देने का कारण कर्म है। कर्म में यह शक्ति है कि अपने उचित समय में कर्म करने वाले पुरूष या प्राणी के शरीर में एक कार्य उत्पन्न करें और ये सारी बातें जिन्हें दुर्घटना और रोग कहते है, न्यायकारियों के व्यापार व्यवहार आदि केवल निमित कारण है, जिनके द्वारा कार्य उत्पन्न होता या किया जाता है।

इसलिए परमात्मा के यत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि पारितोषिक या दण्ड कार्य की आकृति में कारण कार्यभाव से आप ही आप मिलते रहते हैं। यह कारण जैसा कि ऊपर बताया गया है, कर्म है। कर्म एक सर्वथा सत्य वस्तु है, परन्तु वह जड़ वस्तुहै। यह एक सूक्ष्म पुद्गल है, जिसे शरीर कई बाह्य विकारो के हेतु से अपनी ओर खींच लेता है। बाह्य विकार काम, क्रोध, माया, लोभ, मोह, अहंकार और मिथ्यात्व रूप हैं, जो एक प्रकार के अन्य कर्म हैं।

फिर यदि कोई यह पूछे कि "गॉड" हमारा कर्ता नहीं है, यदि वह हमें अच्छे और बुरे कर्मों का फल नहीं देता, यदि वह मानवजाति के लिए कोई लाभदायक कार्य नहीं करता और न मनुष्य के व्यापारों में व्यापार करता है (अर्थात् न मनुष्य के कामों में दखल देता है) तो फिर ऐसे देव या परमात्मा के पूजने से क्या लाभ हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि ऐसे सच्चिदानन्द देव के पूजन करने से जैसे कोई मनुष्य पराक्रम शूरवीरों की पूजा करता है और उनके गुणों पर ध्यान देने से वे ही गुण हम में आ जाते है या यह कहो कि उन्हीं गुणों का हममें प्रकट होना सम्भव हो जाता है, यदि हम उसका शुद्ध हृदय और सच्चे भाव से मनन करें। यह एक नियम है कि जैसी वस्तुओं का मनुष्य विचार करता है, उसके विचार वैसे ही हो जाते हैं या उन्हीं वस्तुओं का सा रूप ग्रहण कर लेते हैं। परमात्मा के गुणों पर विचार करने से मनुष्य की दशा सुधर जाती है। उसकी आध्यात्मिक प्रकृति उन्नति करने लगती है और अन्त में वह उस पदवी को प्राप्त कर लेता है, जब वह यह यथार्थतया समझने लगता है कि परमात्मा के गुण उसके गुण भी हैं, वे गुण प्रत्येक मनुष्य के भीतर छुपे हुए हैं, परन्तु सांसारिक राग और द्वेष से ये दैवी गुण मनुष्य में अव्यक्त है अर्थात् इन गुणों पर राग और द्वेष का आवरण (परदा) पड़ा हुआ है। इससे सिद्ध है कि यद्यपि बाह्य देव या परमात्मा किसी मनुष्य को कोई वस्तु नहीं देता और न किसी से कुछ लेता है, तथापि परमात्मा की पूजा एक निमित्त है, जिससे मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति उत्पन्न हो सकती है और इसलिए इस उद्देश्य से परमात्मा का पूजन अतीव लाभदायक है।

एक और प्रश्न यह पूछा जा सकता है कि यदि "गॉड" जगत् का कर्ता और शास्ता नहीं है और न वह जगत् के कामों में दखल देता है तो उसे सर्वशक्तिमान कैसे कह सकते हैं। इस प्रश्न के उत्तर में दो बातें विचारने योग्य हैं– प्रथम यह कि जिस राजा ने अपने शत्रुओं को लड़ाई में जीत लिया है और उसमें इतनी सामर्थ्य है कि फिर शत्रु उसे सता नहीं सकते, उस राजा को शक्तिमान कहते है। मनुष्य के लिए उसके कषयों या विषयों से बढ़कर और कोई प्रबल शत्रु नहीं है। जिसने अपने कशायों या इन्द्रियों को सर्वथा वष में कर लिया कि फिर वे कशाय या इन्द्रियाँ उसे दुख न दे सके, तो वह मनुश्य अतीव शक्तिमान है और उसे सर्वशक्तिमान कह सकते हैं। दूसरी बात विचारने योग्य यह है कि वस्तुतः शक्ति क्या है। सच पूछो तो किसी वस्तु का स्वभाव ही इसकी शक्ति है। आत्मा का अति आवश्यक स्वभाव जानना और अनन्त ज्ञान है और यही उसकी शक्ति है–और जब ज्ञान शक्ति है तो अनन्त ज्ञान रहने से उसमें अनन्त शक्ति आ जाती है।

इस प्रकार हमने देख लिया है कि यद्यपि जैन धर्म में परमात्मा को जगत् का कर्ता और षास्ता नहीं मानते, तथापि जैन धर्म में परमात्मा को मानते है और यह भी कहते है कि उसकी

पूजा करने योग्य है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि "गॉड" को कर्ता मानने से उसे मूर्ख या दुर्बल मानना पड़ता है। जगत में प्रबन्ध और क्रम के होने से जैन धर्म के अनुसार जो सर्वोत्तम देव या "गॉड" माना गया है, उसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं आता और यह भी सिद्ध हो गया है कि परमात्मा का लक्षण वर्णन करने में जैन मतानुयायी जगत् के कर्ता और शास्ता के गुण उनमें नहीं मानते।

सहायक ग्रन्थ

1– रत्नकरण्ड श्रावकाचार–आचार्य समन्तभद्र
2– छहढाला–पं0 दौलतराम
3– तत्वार्थ सूत्र–आचार्य उमास्वामी
4– जैन तत्वविद्या–मुनि श्री प्रमाण सागर
5– द्रव्य संग्रह–आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्त देव
6– जीव काण्ड– आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्त देव
7– कर्मकाण्ड– आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्त देव